Knowledge Consortium of Gujarat
Department of Higher Education - Government of Gujarat
Journal of Humanity - ISSN : 2279-0233
Continuous Issue-27 | October – December 2016

समकालीन कहानियों में संप्रदायिकता बनाम : मानवीयता

समकालीन समय में हम ऐसे दौर में गुजर रहे हैं, जिसमें इन्सान और उसकी इन्सानियत को सबसे ज्यादा गैर जरूरी, महत्वहीन और अप्रासंगिक साबित करने का षड़यंत्र चल रहा है। जिससे मानवीय जन-जीवन के आपसी संबंधों में ओट और अराजकता को बढ़ावा मिला है। इस संदर्भ को देखे तो आज भारतीय समाज का एक ऐसा बड़ा वर्ग है जिसकी रोटी, कपडा और मकान जैसी मूलभूत ज़रूरतें भी पूरी नहीं हो रही हैं, तो दूसरी ओर राजनीतिक सत्ता और राजनीतिक प्रणाली से जुड़े लोग अपने स्वार्थ की खिचड़ी पकाने में लगे हैं और असीमित अधिकारों का उपभोग कर रहे हैं। इसी संदर्भ में 8वें दशक के बाद लिखी गई कहानियों में यथार्थ और मानवीय तर्क को तलाशने का यहाँ प्रयत्न किया गया है। इन कहानियों में मानवीय सरोकारों के बरक्स अमानवीय सरोकारों को रखकर नई अर्थवत्ता देने का प्रयास किया गया है और साथ में यथार्थ के आसपास बिखरी स्थितियों, परिस्थितियों में अंतर्निहित छोटे-छोटे सकारात्मक पक्षों को कलात्मक स्तर पर खंगालने का प्रयास भी किया गया है।

भारत आज़ाद हुआ उस समय की सांप्रदायिकता को समझना मुश्किल नहीं है, पर समकालीन समय की सांप्रदायिकता को समझना बेहद जटिल है। क्योंकि उनकी जड़ों तक पहचान पाना कठिन है। लेकिन हर रचनाकार के लिए एक प्रश्न यह है कि सांस्कृतिक स्तर पर सांप्रदायिकता का विरोध का स्वर क्या है? इस परिस्थिति के बीच हिन्दी के बहुत से समकालीन कहानीकारों की कहानियाँ धर्म और सांप्रदायिक तनाव के माहौल को अभिव्यक्ति दे रही हैं। जैसे स्वयं प्रकाश, उदय प्रकाश, असगर वजाहत, गीतांजलि, फूलचंद गुप्ता, आनंद बहादुर, पंकज बिष्ट, शिवमूर्ति, संजीव, जेब अख्तर, विष्णु नागर,, अब्दुल बिस्मल्लाह, विनोद मिश्र, मुक्ता और महेश दर्पण जैसे कहानीकारों की कहानियाँ में सांप्रदायिकता के बदलते रूपों का केन्द्रीय विषय दिखाई देता है।

स्वयं प्रकाश की कहानियों में सांप्रदायिकता के बदलते रूपों के बयान के साथ-साथ जीवन एवं सांस्कृतिक प्रक्रियाओं में पनपती, फैलती संकीर्ण सांप्रदायिक मानसिकता, उससे उपजे तनाव और संवादहीनता को पहचानने की कोशिश की गई है। 'पार्टीशन', 'चौथा हादसा', 'रसीद का पायजामा' और 'क्या तुमने कभी कोई सरदार भीखारी देखा है' आदि कहानियों में मानवीय भावनाओं एवं तर्कों को कलात्मक विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। स्वयं प्रकाशजी ने 'पार्टीशन' कहानी में बहुत सारे प्रश्नों को नये अंदाज में पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। यह कहानी सांप्रदायिक मानसिकता की जड़ों को, सांस्कृतिक ऐतिहासिक दृष्टि के साथ उघाड़ने की कोशिश करती है। इस कहानी में हमारे मानवीय सांस्कृतिक जीवनशील मूल्यों का जो विघटन हो रहा है उसका जिक्र किया गया है। कुर्बान भाई शहर में हुए दंगे-फसाद के बावजूद अपना धन-दौलत, परिवार-मुहब्बत गँवाकर पाकिस्तान नहीं जाता। बल्कि वह नई जिन्दगी जीने का संघर्ष करता है। वो अपनी शायरी के बल पर और ईमान के बल पर अपनी खुद्दारी एवं इज्जत भी बचा लेता है। पर सांप्रदायिक हवाओं के चलते हमारे समाज में

कुर्बान भाई को मियां के रूप में ही देखा जाता है। यहाँ कुर्बान भाई के सामाजिक अस्तित्व और व्यक्तित्व को इसलिए कुचला जाता है, क्योंकि वो मुस्लिम है। अपना अस्तित्व और पहचान खोजने के लिए उसके पास बाकी कोई विकल्प नहीं बचता। एक ही विकल्प है - यह कहानी एक अल्पसंख्यक वर्ग की पीड़ा, उसके मनोविज्ञान को संवेदना के साथ हमारे सामने रखती है। यहाँ ऊँखचन्द जैसे फिराकपरस्त लोग सत्तावादी समाज में फैले हुए हैं। सांप्रदायिकता बिना फसाद के भी किस तरह के तनाव, संवादहीनता, विघटन पैदा कर सकती है यह भी प्रस्तुत कहानी में दिखाया गया है। दूसरी तरफ सांप्रदायिकता के कारण जो शहर में रहनेवाले दोनों कोमों के गरीब लोगों का नुकशान और नफा पैसेवालों का ही होगा। उसी का कलात्मक विवरण 'पार्टीशन' में हुआ है।

स्वयं प्रकाश की दूसरी कहानी 'क्या तुमने कभी कोई सरदार भिखारी देखा है' (सन् 1984) में सिख विरोधी सांप्रदायिकता पर लिखी गई है। इन्दिरा गांधी के कत्ल के बाद सारे भारतवर्ष में भड़के हिंसक तूफानों में सामान्य सिखों को जो अपमान और तबाही झेलनी पड़ी, इस सारी त्रासदी को एक मानवीय स्थिति के माध्यम से बड़ी मार्मिकता से व्यक्त किया है। कहानी में एक सिख बुजुर्ग गाड़ी में सफर कर रहा है उस पर उन्मादी सांप्रदायिक भीड़ किस तरह से कहर ढाती है। उसका सशक्त उदाहरण हमें इस कहानी में देखने को मिलता है। क्योंकि वह सिख है उसके सर पर केश और पगड़ी है। बुढ़े सिख को महसूस होता है कि वह जिस समाज में रह रहा है वह सिख समाज ही उसका सबसे बड़ा जुर्म है। उसमें उसकी पहचान और अस्मिता को कितना बड़ा खतरा है। वह अपने आप को शौचालय में बंद कर कर लेना उचित समझता है। अपनी खुद्दारी और मेहनत के बल पर जीनेवाली जाति भिखारी में तब्दील करने की सोच ही क्या किसी जाति की पराजित मनोवृत्ति का सांप्रदायिक आधार नहीं है? पूरी तरह से देखा जाय तो प्रस्तुत कहानी में सांप्रदायिक राजनीति अभावग्रस्त आदमी को इस तरह से हैरान-परेशान करने में कामियाब रही है। क्योंकि इसका कारण दूसरी कौम धर्म के लोग भी हैं। इसी संदर्भ में राजेन्द्र यादवजी ने विजय मोहन से बात करते हुए एक बार कहा था -- "जातिवाद मुझे अलग से खतरनाक नहीं लगता, क्योंकि मूलतः जातिवाद और सांप्रदायिकता एक ही है। सांप्रदायिकता उसका एक बाहरी चेहरा है जिसका मूलतत्व जातिवाद है।.... सांप्रदायिकता की एक मात्र खासियत यह है कि वह पूरे समाज को दो हिस्सों में बाँटती है - एक विधर्मी और दूसरा अधर्मी।"(उद्भावना, अंक-39-40, अक्तू-95 से जनवरी-96, पृ. 217)

इसी तरह स्वयं प्रकाश की अन्य दो कहानियों, 'चौथा हादसा' और 'रशीद का पायजामा' में समकालीन जीवन की परिस्थितियों के बीच यथार्थवादी तरीके से हिन्दू-मुस्लिम रिश्तों को कायम मानवीय रिश्तों में तबदील करने की मुहिम देखने को मिलती है।

दूसरे समकालीन कहानीकार उदय प्रकाश की कहानी 'और अंत में प्रार्थना' में धर्म के राजनीतिक इस्तेमाल का चित्रण है। आठवें और नवें दशक में जिस तरह से राजनीति का सांप्रदायिक ध्रुवीकरण देखने को मिला। इससे समाज में रहनेवाले इनसानों में इन्सानियत रखनेवाले मनुष्य के लिए चिंता का विषय रहा। इसी चिंता के विषय को शायद प्रस्तुत कहानी एक बदलते हुए यथार्थ की तरह हमारे सामने रखती है। यह कहानी कहीं-न-कहीं यह महसूस करवाती है कि आज के हिंसक, भ्रष्ट, सांप्रदायिक, जहरीले अमानवीय वातावरण में मानवीय एवं धार्मिक मूल्यों, प्रार्थनाएँ अंतिम चीख से ज्यादा कुछ भी नहीं है। इस कहानी का केन्द्रीय पात्र डॉ. दिनेश मनोहर वाकणकर पेशे से डॉक्टर और निष्ठा से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का समर्पित कार्यकर्ता है। लेकिन एक

कहावत है कि बोलने के और चबाने के दाँत अलग होते हैं। उसी तरह आदर्शवादी बननेवाला एक डाक्टर किस तरह से आर.एस.एस. जैसे फासीवादी-नस्लवादी सांप्रदायिक संगठन से जुड़ा रह सकता है! कोई डॉक्टर पच्चीस साल तक उसमें सक्रिय कार्यकर्ता के तौर पर काम करता है और बौद्धिक प्रमुख जैसे महत्वपूर्ण पद तक पहुँचता है । सिद्धांत और व्यवहार में ऐसा जबर्दस्त अंतरविरोध कैसे है? यह कहानी यह भी बताती है कि आर.एस.एस. हो या कॉन्ग्रेस या कम्युनिस्ट सत्ता अनिवार्य रूप से सबको भ्रष्ट करती है। लेकिन प्रस्तुत कहानी हमें वाकणकर के जीवन की त्रासदी पाठकों को (तौफीक अहमद की पुलिस के द्वारा हत्या का सांप्रदायिक रंग देने की घटना) भ्रमित भी करती है। क्योंकि सांप्रदायिक रंग देने की बात जो राष्ट्रीय स्वयं संघ के साथ जुड़ा हुआ पक्ष है।, वही भ्रष्ट दुराचार में जुड़ता लगता है। यह कहानी संघ की सोच और उसके सिद्धांतों के बीच विरोधाभास सामने लाती है। इसी सिद्धांतों और व्यवहारों में रही एकता को वाकणकर के द्वारा न समझ पाने की वैचारिक सीमा को उजागर करती है। जवरीमल्ल पारख कहते हैं -- “उदय प्रकाश अपने समय को किस रूप में देखते-परखते हैं। इसकी कुछ पहचान हम इस ‘आत्मकथ्य’ से कर सकते हैं।”(‘और अंत में प्रार्थना’, कहानी-संग्रह की प्रस्तावना से उद्धृत, आधार प्रकाशन, न. दिल्ली।)

समकालीन कहानी के तीसरे कहानीकार पंकज बिष्ट की ‘जटायू’ और ‘नरो व कुंजरो व’ कहानी सांप्रदायिकता की समस्या को उग्र मुद्रा में व्यक्त करती है। ‘जटायू’ कहानी में मानवीय स्थिति का प्रस्थान बिंदु बेहद गंभीरता के साथ कथा-संवेदना और समय के यथार्थ को एकसाथ हमारे सामने प्रस्तुत करती है। साथ-साथ वैचारिक सनसनीवाद के कारण कहानी उत्सवधर्मी और हृदयविदारक लगती है। ‘नरो व कुंजरो व’ कहानी अति संवेदनशीलता के साथ स्थितियों और मनःस्थितियों को गहराई से पकड़ पाई है। इसी तरह से शिवमूर्ति की कहानी ‘त्रिशूल’ को देखा जा सकता है। यह कहानी पंकज बिष्ट की ‘जटायू’ से कम असरदार नहीं, बल्की इसमेंइसमें इव्यवसायिक भावुकतावाद का निरूपण ज्यादा देखने को मिला है। दूसरी तरफ यह भी कह सकते हैं कि समाज में फिरकापरस्ती ने मानवी रिश्तों की तरलता, सहजता एवं संवेदना को पत्थरीला कर दिया है और मानवीय रिश्तों की परिभाषाएँ बदल दी है। यह कहानी सारी बातें मार्मिकता के साथ पाठकों के सामने प्रस्तुत करती है।

समकालीन चौथी कहानीकार गीतांजलिश्री की बहु चर्चित कहानी ‘बेलपत्र’ आधुनिक प्रगतिशील चेतना, संस्कार-ग्रस्तता एवं सामाजिक व्यवस्था के अंतर्विरोधों को आपसी टकराहट को सचेत ढंग से प्रस्तुत करती है। इस कहानी में ओम (हिन्दू) और फातिमा (मुस्लिम) दोनों प्रेम-विवाह करके एक रिश्ते में बँध जाते हैं, पर हिन्दू-मुसलमान के बीच जो सामाजिक तनावपूर्ण रिश्ता है, जिससे समाज उसे स्वीकार नहीं करता। उस पर जो सामाजिक दबाव का टकराहट झेलना पड़ा हैं, पर अंत में सिर्फ यह कहानी यहाँ तक सीमित रह जाती है। इसमें कहानीकार प्रेम-विवाह का अंतर्विरोध को उजागर करती तो है, दोनों पात्रों का प्रेम और प्रेम-विवाह मात्र एक ढकोसला साबित होता है। यह हमारे समाज का बुनियादी समझौता है। अस्वीकृति करनी पड़ती है इसकी वजह सामाजिक दबाव है। सामाजिक दबाव से अधिक-से-अधिक स्त्री को ही पिसना पड़ता है। दूसरी तरफ बात यह है कि फातिमा तो मुस्लिम है इसीलिए तो उसे पारिवारिक समझौता कर सकती है, पर जब उसके मुस्लिम-अस्तित्व को झुठलाया जाता है, तब सांप्रदायिकता के तहत देखे तो फातिमा अने जातीय-अस्तित्व पर चोट महसूस करती है। क्योंकि वह न चाहते हुए भी नमाज पढ़ना चाहती है। फातिमा जैसी लड़की का नामाज पढ़ने लग जाना, अल्प संख्यक वर्ग का बहुसंख्यक वर्ग की तानाशाही एवं सांप्रदायिक दृष्टि का विरोधभर है। जब

ओम की माँ कहती है कि - "मेरी हूबहू कहीं से भी मुसलमान नहीं लगती।"(बेलपत्र,पृ.43) इससे मुस्लिम होने के नाते ही उसकी उपेक्षा बड़ी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत हुई है। फातिमा और ओम के बीच की टकराहट सामाजिक मूल्य और प्रतीक की खातिर बचाना चाहता है। दोनों के बीच समझौता होने से फातिमा तिलमिला उठती है और कहती है -- "हाँ हाँ सिम्बल! बस सिम्बल बनकर रह गये है। मुर्दा सिम्बल...."(बेलपत्र, पृ. 44) इसी तरह से यह कहानी समाज के वर्गीय संस्कार तथा समाजिक व्यवस्था के रूढ़िवादी, संकीर्ण दबावों की टकराहट को यथार्थ के साथ पेश करती है। इसी संदर्भ को लेकर शिवकुमार मिश्र कहते हैं कि -- "आदमी को आदमी के रूप में देखना ही सेक्युलर दृष्टिकोण है। तमाम दावों के बावजूद भी यह नहीं है। अगर हम हिंदू हैं तो हिन्दू होने का एहसास और अगर मुसलमान हैं तो मुसलमान होने का एहसास है। यह खत्म होना चाहिए।" (उद्भावना, अंक-39-40, अक्तू-95 से जनवरी-96, पृ. 234)

समकालीन पाँचवें कहानीकार फूलचंफूलचंद गुप्ता की 'चित्रकार' ककहानी में एक मुस्लिम चित्रकार रहमान अहमदाबाद के रेलवे स्टेशन पर तारकोल की सड़क पर हनुमानजी का चित्र बनाकर भीख माँगता है। यह चित्र ही उसकी चित्रकला के अद्भुत मानवीय रूप को प्रस्तुत करता है। अहमदाबाद शहर की स्थिति इस समय ठीक नहीं है चल रही थी। सांप्रदायिक दंगे शहर के किसी भी कोने से ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ते थे। इसी चिंता को लेकर कहानीकार चित्रकार को पूछते हैं --"शाम हो गयी है, तुम घर नहीं जाओगे? शहरशहर की स्थिति ठीक नहीं हैं। कहीं दंगा-फसाद शुरू हो जाये...।

'मैं आम जनता हूँ...' उसने मेरी बात काटते हुए कहा 'मेरी कोई जाति नहीं है, मेरा कोई धर्म नहीं है। न मैं हिन्दू हूँ और न मुसलमान। फिर मुझे सांप्रदायिक दंगों से क्या लेना देना?'उक"हाद ('प्रायश्चित नहीं, प्रतिशोध' कहानी संग्रह, पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद, पृ.99)

यह है रहमान की मानवीयता। लेकिन कहानी के अंत में शहर के सांप्रदायिक दंगों ने ही रहमान की जान ली। यहाँ कहानीकार एक मुस्लिम चित्रकार की मानवीयता का बखूबी से प्रस्तुत करते हैं।

इसी तरह की विष्णु नागरजी की दो कहानियों - 'ईश्वर की कहानियाँ' और 'बूजीरे का बच्चा' संस्कारग्रस्तता तथा यथास्थितिवादी मानसिकता को तोड़ने का प्रयास करती हैं। यहाँ ये कहानियाँ आम आदमी के विवेकबोध तथा मानवीय चेतना को जाग्रत करने का काम करती देखने को मिलती हैं। इसी तरह आनंद बहादुर की 'बकरा' और जेब अख्तर की 'छोटे-छोटे पाकिस्तान' असगर वसाहत की 'सारी तालीमात' औऔरर ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'सलाम' आदि कहानियों में सामाजिक यथार्थबोध को पकड़ने की संवेदना रखती हैं। इसी लिए समकालीन कहानी अपने समय में तेजी से बदल रहे सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करने में पूरी तरह से सक्षम है। साथ-साथ जिन्दगी को वास्तविकता के ज्यादा-से-ज्यादा नजदीक लाने की शुरूआत भी है। मुख्य रूप से इन कहानीकारों ने मानवीय तर्क को अमानवीय यथार्थ के संदर्भों में से उठाकर एक नई अर्थवत्ता देने का प्रयास किया है इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

****

डॉ. अमृत प्रजापति
सरकारी आर्ट्स एवं कॉमर्स कॉलेज कडोली
ता. हिंमतगनर,
जि. साबरकांठा

Copyright © 2012- 2017 KCG. All Rights Reserved. | Powered By: Knowledge Consortium of Gujarat